THE TIMES OF INDIA

Date:04-10-23

This Doesn't Count

India's fast-growing economy must generate more social mobility for caste to lose its political appeal

TOI Editorials

Bihar's government yesterday called for a meeting of all political parties to discuss the findings of the state caste survey. Political parties have for long been at the forefront of asking for caste enumeration as it feeds into their mobilisation strategies. The pressure ahead of Census 2011 for caste enumeration was intense enough for UPA to form a group of ministers to examine it. It decided to keep caste out of the census. One can be sure that the government that oversees the next census will also face huge pressure to enumerate caste.

Caste represents both the fundamental fault line and social grouping of Indian society. It spans religions – in Census 1931 over 300 castes were categorised as Christian and over 500 as Muslim. Post-Independence, censuses were limited to enumerating just SC/ST. But neither enumerators nor people have any discretion. GOI identifies groups that fall under these categories and enumerators do a basic headcount. Expanding this to enumerate other castes is very complicated as jati defies standardisation across regions. The results can be bewildering. For example, Census 1931 identified 4,147 castes. Around 2004, an India Human Development Survey result led to a count of 7,372 castes.

There's worry that a caste enumeration will lead to a breach of the 50% cap in reservation. SC has already opened the door to it. Last year, a constitution bench upheld EWS reservation in a 3:2 verdict. The minority opinion warned breaching the 50% cap for EWS may lead to the right to equality being undermined by the right to reservation. Intermingling of caste with political mobilisation and development makes it hard for Indians to escape ascriptive identities and be treated as individuals. As a polity, we would have been better off with class, not caste, as the locus of political mobilisation for economic development.

Shortcomings in our economic transformation have created a political impetus to use caste as an imagined corrective mechanism. The slow pace of intergenerational mobility is sought to be offset by more reservations. For instance, State of Working India 2023 found that even between 2004-18, a phase of high economic growth, sons of casual labourers who couldn't change their economic status declined from 85% to just 69%. The pace of structural transformation cannot be increased by more slicing and dicing of society. Therefore, caste shouldn't be enumerated in a census.

दैनिक भास्कर

Date:04-10-23

जजों की नियुक्ति में देरी से टकराव की स्थिति बन रही

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट की एक बेंच ने अटॉर्नी जनरल से कहा कि 'सरकार हमारे धैर्य की परीक्षा न ले। आज हम शांत हैं लेकिन अगली सुनवाई में यह शांति शायद न रहे।' इस समय दूसरे सबसे सीनियर जज जस्टिस संजय कौल ने यह टिप्पणी करते हुआ कहा कि आज भी जजों की नियुक्ति, ट्रांसफर और प्रोन्नति के कुल 70 मामले सरकार के पास लंबित हैं, जिनमें से कुछ पिछले नवम्बर के हैं। अटॉर्नी जनरल से कहा गया कि 9 अक्टूबर को सरकार से इस देरी का स्पष्ट कारण पूछकर आएं। सुप्रीम कोर्ट की बेंच का यह आक्रोश अकारण नहीं था । लगातार कुछ वर्षों से सरकार कॉलेजियम सिस्टम की निंदा कर इसे खत्म करना चाहती है। मंत्री से लेकर उप-राष्ट्रपति तक इसके खिलाफ सदन में ही नहीं, जनमंचों से भी बोल रहे हैं। बेंच के गुस्से का तात्कालिक कारण था मणिपुर में फिर हिंसा की ताजा घटनाएं। दरअसल इस राज्य में हिंसा की शुरुआत के पीछे वहां की हाईकोर्ट का एक फैसला माना जा रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने इस फैसले की निंदा की। इसके कुछ हफ्ते बाद हाईकोर्ट के रिक्त मुख्य न्यायाधीश के पद के लिए दिल्ली के दूसरे सबसे वरिष्ठ जज के नाम की संस्तुति की गई। लेकिन सरकार ने कोई जवाब नहीं दिया और राज्य में न्याय व्यवस्था बिगड़ती गई। सुप्रीम कोर्ट कॉलेजियम यह भी जानती है कि सरकार कुछ नामों पर अमल करती है और कुछ पर असाधारण देरी । इसकी वजह से कई जूनियर वकील सीनियर जज हो जाते हैं और सीनियर और बेहतर वकील नाराजगी में जज बनने से इंकार कर देते हैं। न्यायपालिका को भावी अच्छे जजों से वंचित होना पड़ता है। कॉलेजियम में पारदर्शिता के आरोपों के मद्देनजर सीजेआई ने हाल ही में बताया कि प्रोन्नति के लिए जजों के विगत तीन साल के फैसलों की गुणवत्ता देखकर एक बड़ी टीम अपनी राय बनाती है । बहरहाल सरकार को ऐसे टकराव से बचना चाहिए।

दैनिक जागरण

Date:04-10-23

जाति आधारित गणना की राजनीति

अवधेश कुमार, (लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

इसमें अब कोई दो राय नहीं कि आइएनडीआइए की ओर से जातीय गणना को आगामी लोकसभा चुनाव में एक बड़ा मुद्दा बना दिया गया है। बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार को इसके लिए गठजोड़ के साथियों की ओर से वाहवाही मिल रही है। उनके पास कहने के लिए भी है कि मैंने जो कहा, उसे कर दिखाया। पहली नजर में यह तर्क गले उतरता है कि जब आरक्षण का आधार जातियां हैं तो क्यों न यह देख लिया जाए कि कहां किस जाति की कितनी संख्या है और उनकी आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक स्थिति कैसी है? जातीय गणना के पक्ष में सबसे प्रबल तर्क यही है। नीतीश सरकार ने जातीय गणना के आंकड़े तो जारी कर दिए, लेकिन अब यह देखना दिलचस्प होगा कि इनका इस्तेमाल वहां किस तरीके से होता है। बिहार सरकार कह रही है कि सरकार की नीतियों में इन आंकड़ों की वास्तविकता दिखाई देगी। इसके मायने क्या हैं? क्या जिस जाति की जितनी संख्या बताई गई है, उसके अनुसार ही उन्हें आरक्षण एवं अन्य सरकारी योजनाओं का लाभ दिया जाएगा या फिर उसका उपयोग अलग तरीके से किया जाएगा?

जातीय गणना का उद्देश्य और क्रियान्वयन की स्पष्ट रूपरेखा सामने होनी चाहिए थी। यह तभी संभव होता जब सामाजिक न्याय के सैद्धांतिक सोच से काम होता। नीतीश कुमार ने जब भाजपा से अलग होने का मन बना लिया, तभी से जातीय गणना की आवाज उठाई। अन्यथा पहले उनका जोर बिहार को विशेष राज्य का दर्जा दिलाने तक सीमित था। क्या इसका कारण यह था कि देश में लोग हिंदुत्व की राजनीति की ओर आकर्षित हुए हैं? चुनावी सर्वेक्षण प्रमाणित करते हैं कि जहां भी भाजपा का जनाधार है, वहां कुछेक स्थानों को छोड़ दें तो पिछड़ों, दलितों और आदिवासियों का सर्वाधिक मत उसके खाते में जाता है। उसके पास सबसे अधिक ओबीसी सांसद हैं।

यह विडंबना ही है कि सामाजिक न्याय और उसके एक पहलू आरक्षण को राजनीति का सबसे बड़ा हथियार बना लेने के कारण उसका वास्तविक उपयोग, परिणाम एवं समीक्षा की विवेकपूर्ण गुंजाइश न के बराबर रह गई है। इसका कारण यही है कि दलितों-पिछड़ों के नाम पर राजनीति करने वाले नेता और पार्टियां इसका उत्तर नहीं दे सकतीं कि उन्होंने अपने लंबे शासनकाल में क्या किया? मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने के बाद 1990 से लगातार लालू यादव और नीतीश कुमार बिहार की सत्ता में हैं। ये खुद को दलितों-पिछड़ों का मसीहा कहते हैं, मगर आखिर 33 वर्षों में बिहार की दुर्दशा का अंत क्यों नहीं हुआ? बिहार इतना पिछड़ा क्यों है? जीएसटी संग्रह में बिहार का स्थान नकारात्मक है। विकास के अन्य मापदंडों जैसे प्रति व्यक्ति आय, रोजगार सृजन और निवेश आदि में भी बिहार फिसड्डी राज्यों में ही है। जबकि लंबे समय तक बिहार जैसी दशा का ही शिकार रहा उत्तर प्रदेश अब विकास की नई ऊंचाइयां छू रहा है? लालू यादव का शासनकाल कुशासन का उदाहरण था। नीतीश कुमार बड़ी उम्मीद लेकर आए और आरंभिक पांच वर्षों तक उन्होंने सुशासन दिया भी। राजनीतिक महत्वाकांक्षा के कारण वह उस दल के साथ गए, जिस पर उन्होंने ही जंगलराज का आरोप लगाया। तेजस्वी यादव के नेतृत्व में राजद बदली हुई पार्टी है तो दिखनी भी चाहिए। बिहार के सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक उन्नयन की दृष्टि से आशा जगाने वाले कदम उठते हुए दिखें तो विश्वास हो कि वाकई ऐसा है।

जाति गणना के आंकड़ों के अनुसार जिन जातियों, परिवारों को आरक्षण का लाभ ज्यादा मिला है, उन्हें अलग करके जो वंचित हैं उन तक लाभ पहुंचाने की नीति बने तो माना जाएगा कि जाति गणना का उद्देश्य विवेकपूर्ण है। समस्या यह है कि आंकड़ों में कई जातियों की संख्या पर प्रश्न उठ रहे हैं। जाति गणना के आंकड़ों के अनुसार 14.27 प्रतिशत यादव एवं 17 प्रतिशत से ज्यादा मुसलमान लालू और तेजस्वी के एमवाई यानी मुस्लिम-यादव समीकरण की दृष्टि से सत्ता तक पहुंचाने के लिए पर्याप्त हैं। नीतीश की कुर्मी जाति तीन प्रतिशत से भी कम है। जातीय समीकरणों के अनुसार बिहार में

लंबे समय तक लालू परिवार के नेतृत्व में ही राज्य की सत्ता रहनी चाहिए। अगड़ी जातियों में ब्राह्मणों, भूमिहारों और राजपूतों की संख्या इतनी कम है कि जातीय समीकरणों की राजनीति में उनकी हैसियत ही नहीं रहेगी। जाति गणना के बाद बिहार के साथ देश में भी हलचल है। यदि एक वर्ग जाति गणना रिपोर्ट को सामाजिक स्थिति की सच्चाई नहीं मानेगा तो उसकी विश्वसनीयता क्या रहेगी? उसका राजनीति पर भी असर होगा ही। संभव है बिहार की राजनीति में एमवाई समीकरण के विरुद्ध नए जातीय समीकरण बनें।

कांग्रेसनीत संप्रग सरकार ने 2011 में जनगणना के समानांतर ही जातियों की गणना कराई थी, जिसे आर्थिक-सामाजिक गणना कहा गया था, लेकिन उसके आंकड़े जारी नहीं किए गए। सिद्दरमैया की पिछली सरकार के दौरान कर्नाटक में जाति गणना हुई। यही काम राजस्थान में भी हुआ। कांग्रेस ने इन्हें जारी नहीं किया। इसी कारण प्रश्न उठ रहा है कि आपने तब आंकड़े जारी नहीं किए और अब जाति गणना पर अड़े हैं? सच यह है कि मोदी सरकार ने संप्रग की जाति गणना के आंकड़े जारी करने का फैसला किया था, किंतु इसके लिए बनी समिति ने काफी परिश्रम के बाद हाथ खड़े कर दिए, क्योंकि लाखों की संख्या में जाति और गोत्र थे। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक जातियों, गोत्रों की एक संख्या बताना संभव नहीं था। हिंदुत्व की बात करने वाली शिवसेना के ठाकरे गुट ने सुप्रीम कोर्ट में जातीय गणना के लिए दरवाजा खटखटाया तो केंद्र ने कहा कि यह व्यावहारिक नहीं है। यही वास्तविकता है, लेकिन राजनीति जो न कराए, कम है। आइएनडीआइए को नहीं भूलना चाहिए कि वीपी सिंह ने अयोध्या आंदोलन के कारण भाजपा के पक्ष में हो रहे हिंदुओं के ध्रुवीकरण की काट के लिए मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू किया। उम्मीद की गई थी कि इससे पिछड़े, दलित और आदिवासी भाजपा के साथ नहीं जाएंगे। अगले चुनाव में जनता दल का ही सफाया हो गया और भाजपा ने 1991 में 121 सीटों के साथ भारी जीत हासिल की। इसलिए जातीय गणना को लेकर राजनीतिक लक्ष्य साधने की कामना करने वाले ठंडे दिमाग से विचार करें।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:04-10-23

नए जातीय समीकरण

संपादकीय

विश्वनाथ प्रताप सिंह सरकार द्वारा अगस्त 1990 में मंडल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने (जिसकी वजह से अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों को आरक्षण में हिस्सेदारी मिली) की घोषणा के 11 महीने बाद पी वी नरसिंह राव सरकार ने देश की अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की दिशा में शुरुआती कदम बढ़ाए। निजी क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़े और सामाजिक और आर्थिक तरक्की के लिए सरकारी नौकरियां ही प्राथमिक वाहक नहीं रहीं। निश्चित रूप से आर्थिक उदारीकरण ने सरकार का राजस्व बढ़ाने में मदद की। उसने केंद्रीय और राज्य सरकारों को समाज कल्याण के लिए और अधिक धन मुहैया कराया। उदाहरण के लिए मौजूदा सरकार का कहना है कि उसकी कई कल्याण योजनाएं मसलन मुद्रा योजना के लाभार्थी अन्य पिछड़ा वर्ग, दलित और महिलाएं हैं। आर्थिक उदारीकरण ने अन्य पिछड़ा वर्ग और अनुसूचित जाति के लोगों के लिए कौशल आधारित रोजगार भी तैयार किए हैं।

मंडल आयोग की रिपोर्ट के बाद पूर्व समाजवादी पार्टियों के विभिन्न अवतारों में शीर्ष पदों पर अन्य पिछड़ा वर्ग के नेताओं की उपस्थिति बढ़ी। भारतीय जनता पार्टी ने बदलाव को अपनाने में कांग्रेस की तुलना में अधिक तेजी दिखाई। मंडल ने उत्तर और पश्चिम भारत की राजनीति को बदल दिया। दक्षिण भारत के राज्य यह प्रक्रिया सन 1960 के दशक से ही देख रहे थे। बहरहाल, मंडल आयोग से मुख्य रूप से अन्य पिछड़ा वर्ग की रसूखदार जातियां लाभान्वित हुईं। देश की शिक्षा व्यवस्था की खस्ता हालत का अर्थ यह था कि इन जातियों में भी जो लोग हाशिये पर थे उन्हें आर्थिक उदारीकरण के लाभों को हासिल करने लायक कौशल हासिल नहीं हो सका। इस बीच अन्य पिछड़ा वर्ग में राज्य और केंद्र की सूचियों में 1990 के बाद से काफी इजाफा हुआ है। हाल के वर्षों में मराठा जैसी कई जातियां इस सूची में शामिल होने के लिए सड़कों पर उतरीं। सामाजिक न्याय की हिमायत करने वाले नेताओं ने मांग की है कि आरक्षण को निजी क्षेत्र में भी लागू किया जाना चाहिए या फिर यह भी कि अब वक्त आ गया है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आरक्षण के लिए तय 50 फीसदी की सीमा को भंग किया जाए। बल्कि 2017 में केंद्र सरकार ने न्यायमूर्ति जी रोहिणी आयोग का गठन किया ताकि आरक्षण के फॉर्मूले को नए तरीके से परखा जा सके और उसने अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों की उप श्रेणियां बनाने की अनुशंसा की। परंतु पिछड़ा वर्ग की आबादी के विश्वसनीय आंकड़े नहीं होने के कारण नीतिगत निर्णय प्रभावित हुए।

आखिरी जाति जनगणना सन 1931 की जनगणना में हुई थी। मंडल आयोग ने उस आंकड़े के आधार पर अनुमान लगाया था कि देश में पिछड़ा वर्ग की आबादी करीब 52 फीसदी होगी। बिहार में हुआ जाति सर्वेक्षण उस कमी को दूर करता है। संभावना यही है कि अन्य राज्यों में भी इसका अनुकरण किया जाएगा या फिर जाति जनगणना ही होगी। बिहार जाति सर्वेक्षण से पता चला है कि वहां की आबादी में पिछड़ा वर्ग की हिस्सेदारी 63 फीसदी है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अति पिछड़ा वर्ग, दर्जनों बंटी हुई छोटी जातियां 36 फीसदी हैं। पिछड़ा वर्ग में 12.9 फीसदी मुस्लिम हैं। 15.52 फीसदी सामान्य आबादी में 4.8 फीसदी मुस्लिम हैं। राजनीतिक तौर पर इस बात का जोखिम है कि जाति गणना में समस्या से और अधिक ध्रुवीकरण हो सकता है तथा इसके दीर्घकालिक परिणाम हो सकते हैं। बहरहाल, समय के साथ जैसा कि मंडल राजनीति ने दिखाया भी भाजपा और कांग्रेस समेत सभी दलों को अपनी राजनीतिक रणनीति को नए परिदृश्य के मुताबिक बदलना होगा।

इस संदर्भ में जाति आधारित कोटा पर 50 फीसदी की सीमा को लेकर निश्चित रूप से विवाद होगा। जिन जातियों को मंडल आयोग का लाभ नहीं मिला वे अपनी हिस्सेदारी मांगेंगी। परंतु जैसा कि भारतीय इतिहास बताता है वास्तविक प्रगति तेज आर्थिक वृद्धि और शिक्षा एवं तकनीक में निवेश के जरिये ही हो सकती है ताकि जनांकिकीय लाभ हासिल किया जा सके। राजनीतिक वर्ग को केवल आरक्षण के माध्यम से सशक्तीकरण पर ध्यान नहीं देना चाहिए। पिछड़ा वर्ग का वास्तविक सशक्तीकरण केवल तभी होगा जब राज्य गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और लाभप्रद रोजगार दिला सकेगा। जाति सर्वेक्षण या अधिक आरक्षण अपने आप में कोई लक्ष्य नहीं हो सकते।

जनसत्ता

Date:04-10-23

समाज की गणित

संपादकीय

जाति के आधार पर जनगणना की मांग पुरानी है, मगर राष्ट्रीय स्तर पर इस मांग को लेकर अब तक कोई पहल नहीं हुई है। मगर बिहार में जनता दल (यू) और राष्ट्रीय जनता दल की मौजूदा सरकार ने इस काम को पूरा किया और सोमवार को इसके निष्कर्षों पर आधारित आंकड़े जारी कर दिए। इसके मुताबिक, बिहार में अन्य पिछड़ा वर्ग और अति पिछड़ा वर्ग की कुल आबादी तिरसठ फीसद है। अनुसूचित जातियों की संख्या 19.65 फीसद और अनुसूचित जनजाति की 1.68 फीसद है। सामान्य वर्ग में आने वाली जातियों के लोगों की तादाद 15.52 फीसद है। धार्मिक आधार पर देखें तो कुल हिंदू आबादी 81.9 फीसद और मुसलिम 17.7 फीसद हैं। यानी जाति आधारित जनगणना के बाद राज्य में अलग-अलग जातियों और धर्मों के लोगों की संख्या के बारे में अब तस्वीर साफ हो गई है। इसे लेकर राज्य सरकार की दलील है कि इसके जरिए सभी जातियों की आर्थिक स्थिति की भी जानकारी मिली है और इसी के आधार पर अब सभी सामाजिक वर्गों के विकास और उत्थान के लिए काम किया जाएगा।

जाहिर है, सरकार के दावे के आलोक में देखें तो जाति आधारित जनगणना के आंकड़े आने के बाद सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों में भागीदारी का सवाल हल करने और जरूरतमंद तबकों की स्थिति में सुधार के लिए नीतियां बनाने में मदद मिलेगी। मगर यह देखने की बात होगी कि इसका उपयोग विकास और उत्थान में कितना होगा और कितना इसका इस्तेमाल राजनीतिक मुद्दे के तौर पर किया जाएगा। दरअसल, यह सवाल अक्सर उठाया जाता रहा है कि सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों को लक्षित सरकारी नीतियों में जिन तबकों की हिस्सेदारी तय की जाती है, उनके बीच के कुछ समर्थ समूह उसका लाभ उठा लेते हैं और एक बड़ा हिस्सा वंचित रह जाता है। खासकर पिछड़े वर्गों को हिस्सेदारी के संदर्भ में यह दावा किया जाता रहा है कि अब इस तबके की आबादी काफी ज्यादा हो गई है और इसके मुकाबले इन्हें मिलने वाला आरक्षण काफी कम है। इसके अलावा, जाति और वर्ग के आधार पर बनाई गई मौजूदा योजनाओं और कार्यक्रमों में कुछ खास सामाजिक समुदायों को आबादी के अनुपात में हिस्सेदारी नहीं मिल पाती है, क्योंकि उनकी संख्या से संबंधित कोई अद्यतन पुख्ता आंकड़े नहीं हैं।

सवाल है कि इस मसले पर अब तक चलने वाली जद्दोजहद का कारण क्या सिर्फ यही रहा है कि इसके जरिए सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों में सभी तबकों को न्यायपूर्ण भागीदारी दिलाई जा सके! हो सकता है कि जाति और वर्ग के आधार पर बनने वाली नीतियों पर इसका असर दिखे। हालांकि यह बिहार सरकार की इच्छाशक्ति पर निर्भर होगा कि वह आबादी के अनुपात में सबकी भागीदारी और इसके साथ-साथ न्यायपूर्ण तरीके से बिना भेदभाव किए वंचित वर्गों के हित कैसे सुनिश्चित कर पाती है। बिहार में हुई इस कवायद का राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक असर यह पड़ सकता है कि देश भर में जाति आधारित जनगणना की मांग जोर पकड़े और यह एक चुनावी मुद्दा भी बने। यों सर्वोच्च न्यायालय ने पटना उच्च न्यायालय के इससे संबंधित फैसले के खिलाफ की गई अपील पर सुनवाई की स्वीकृति दे दी है। मगर यह ध्यान रखने की जरूरत है कि वक्त के साथ जाति के आधार पर पूर्वाग्रह-दुराग्रहों को कमजोर करना राजनीतिकों का दायित्व होना चाहिए। इसलिए बिहार में हुई जाति आधारित जनगणना को राजनीति का जरिया न बना कर इसे वंचित तबकों के लिए न्याय मुहैया कराने का ही आधार बनाया जाए, अन्यथा इसका मकसद बेमानी हो जाएगा।

Date:04-10-23

सम्भावना का सम्मान

संपादकीय

इस बार चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार की घोषणा निश्चित रूप से एक ऐसी खोज का सम्मान है, जिससे महामारियों से पार पाने और मानव शरीर में प्रतिरोधी क्षमता विकसित करने का एक नया रास्ता खुला। यह सम्मान कोरोना से लड़ने के लिए एमआरएनए टीके विकसित करने वाले काटालिन कारिको और ड्रयू वीसमैन को संयुक्त रूप से दिया जा रहा है। नोबेल सभा के अनुसार इन दोनों वैज्ञानिकों ने 'न्यूक्लियोसाइड' आधारों को संशोधित करने से जुड़ी महत्वपूर्ण खोजें की है, जिनकी वजह से कोविड-19 के एमआरएनए टीके विकसित कर पाना मुमकिन हो पाया। निश्चित रूप से इन टीकों के विकास की वजह से लाखों जिंदगियां बचाई जा सकीं। कोरोना महामारी के वक्त पूरी दुनिया में लोगों की जान बचाना चुनौती बना हुआ था, इसके विषाणु से लड़ने के लिए कोई भरोसेमंद दवाई उपलब्ध नहीं थी। यह विषाणु लगातार स्वरूप बदल और अधिक घातक रूप में सामने आ रहा था। तब यह स्पष्ट हो चुका था कि मानव शरीर में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ा कर ही इसके प्रभाव को बेअसर किया जा सकता है। ऐसे समय में ऐसा टीका बनाना कठिन काम माना जा रहा था, जो मानव शरीर में प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा सके। मगर कारिको और वीसमैन ने एमआरएनए की खोज कर इस चुनौती को आसान बना दिया था।

कोरोना महामारी के दूसरे चरण में स्थिति यह थी कि हर दिन हजारों लोग मौत के मुंह में समा रहे थे, अस्पतालों में जगह कम पड़ गई थी, कोरोना मरीजों के लिए अलग से शिविर लगाने पड़े थे। ऐसे भयावह वक्त में टीके तैयार करना और फिर उनका परीक्षण करके सभी नागरिकों तक उपलब्ध कराना और भी मुश्किल काम था। मगर दुनिया भर के वैज्ञानिकों ने इस कठिन चुनौती को स्वीकार किया और कम समय में भरोसेमंद टीकों का निर्माण कर व्यापक पैमाने पर इसकी खुराक देना संभव बनाया था। इस कामयाबी के पीछे कारिको और वीसमैन की खोज ने बड़ी भूमिका निभाई थी। इन वैज्ञानिकों की ही खोज से पता चल सका था कि एमआरएनए हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली के साथ कैसे संपर्क करता और यह किस तरह शरीर में प्रोटीन का प्रवाह बढ़ा कर रोगों से लड़ने में मददगार साबित हो सकता है।

हालांकि हर वैज्ञानिक खोज के पीछे कोई न कोई आधार खोज काम कर रही होती है। इस दृष्टि से कारिको और वीसमैन को निश्चित रूप से स्वीडिश वैज्ञानिक स्वांते पाबो की खोज से मदद मिली थी। पाबो ने निएंडरथाल डीएनए के रहस्यों को उजागर किया था, जिससे मानव शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली से जुड़ी महत्वपूर्ण जानकारियां सामने आई थीं। पाबो को पिछले साल चिकित्सा के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। जिस तरह बदलती जीवन-शैली, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, कुपोषण आदि के चलते नए विषाणुओं के पनपने और खतरनाक रूप धारण करने के खतरे हर समय बने रहते हैं। कोविड के महामारी रूप में फैलने की बड़ी वजह भी यही थी। भविष्य में भी ऐसी महामारियों का आशंकाएं जताई जाती रहती हैं। ऐसे में चिकित्सा विज्ञानियों का मानव शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ा कर ही रोगों से लड़ने और जीवन बचाने का भरोसा बना हुआ है। डीएनए के रहस्यों से परदा उठने के बाद मानव शरीर की सूक्ष्म संरचना

में बदलाव करने के रास्ते खुलते गए हैं। कारिको और वीसमैन ने इस दिशा में निश्चित रूप से संभावनाओं से भरा एक रास्ता खोला, जो भविष्य के खतरों का सामना करने का साहस देता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:04-10-23

भारत के साथ संतुलित संबंध जरूरी

डॉ.नवीन कुमार मिश्र

मालदीव के चुनाव परिणाम में जनता ने इब्राहिम मा. मोहम्मद सोलिह की जगह राष्ट्रपति पद के लिए मोहम्मद मुइज्जू को अपना नया नेता चुना है, जो 46 प्रतिशत के मुकाबले 54 प्रतिशत मत पाकर जीत गए, जबकि सोहिल वर्ष 2018 में भारी बहुमत से जीत हासिल कर सत्ता में काबिज हुए थे। सोलिह की चुनावी हार के लिए सत्ता विरोधी लहर, कोविड-19 के बाद पर्यटन पर निर्भर अर्थव्यवस्था को लेकर चिंता, अपनी पार्टी डेमोक्रेटिक पार्टी ऑफ मालदीव (एमडीपी) के भीतर ही पूर्व राष्ट्रपति मोहम्मद नशीद के साथ कलह के अलावा मालदीव की प्रोग्रेसिव पार्टी (पीपीएम) द्वारा भारत को लेकर उठाए गए संप्रभुता से जुड़े मुद्दे को जिम्मेदार माना जा रहा है।

पीपीएम ने भारतीय सैन्य कर्मियों को मालदीव से बाहर करने के लिए इंडिया आउट को प्रमुख मुद्दा बनाया, जिसके मुख्य सूत्रधार अब्दुल्ला यामीन 11 वर्ष की जेल की सजा काट रहे है। वर्ष 2013 से 2018 के अपने कार्यकाल के दौरान उनकी छवि खुले तौर पर भारत विरोध की थी। मुक्त व्यापार समझौते और बुनियादी ढांचे से जुड़ी परियोजनाओं के लिए मालदीव चीन के कर्ज-जाल में फंस गया, परंतु वर्ष 2018 में सत्ता में आते ही इब्राहिम मोहम्मद हितों का ख्याल रखते हुए गत दस वर्षों में भारत ने मालदीव सोलिह ने 'इंडिया फर्स्ट' की नीति अपनाते हुए मालदीव की को दो हेलीकॉप्टर और एक छोटा विमान दिया है। वर्ष अंतरराष्ट्रीय नीतियों में बदलाव किए। भारत ने वहां बुनियादी 2021 में मालदीव डिफेंस फोर्स ने बताया कि भारत के 75 ढांचे से जुड़ी कई परियोजनाएं शुरू कीं, कोविड महामारी के सैन्य अधिकारी मालदीव में रहते हैं और भारतीय एयरक्राफ्ट दौरान मालदीव की सहायता की और मालदीव के विदेश का संचालन और रखरखाव करते हैं। भारत ने मालदीव में मंत्री अब्दुल्ला शाहिद को 2021 और 2022 के बीच 76वीं बुनियादी ढांचे के विकास के अलावा वर्षों से मालदीव के संयुक्त राष्ट्र महासभा का अध्यक्ष चुने जाने के अभियान में नागरिकों को शिक्षा, स्वास्थ्य व विभिन्न क्षेत्रों में अनिगनत मदद भी की। राष्ट्रपति चुनाव को भारत बनाम चीन की अवसर भी प्रदान किया है। भारत अपने सैन्य अकादमियों प्रतिस्पर्धा के रूप में देखा गया तथा इस चुनावी नतीजे में चीन में मालदीव के सुरक्षा अधिकारियों को प्रशिक्षित भी करता समर्थक मोहम्मद मुइज्जू की जीत ने मालदीव को वैश्विक है। अब्दुल्लाह यामीन के कार्यकाल के दौरान मालदीव चीन सुर्खियों में ला दिया है, जिसको भारत के लिए एक खतरे की घंटी के रूप में चित्रित करने की कोशिश की गई है। मालदीव के साथ भारत के गहरे सांस्कृतिक और आर्थिक संबंध सदियों पुराने हैं। भारत के विदेश मंत्रालय ने तीन जून 2023 के एक दस्तावेज की घोषणा में कहा है कि मालदीव में भारत की एक प्रमुख स्थिति है, जिसमें लगभग अधिकांश क्षेत्रों में संबंध हैं। हिंद महासागर में मालदीव की अवस्थिति रणनीतिक रूप से बेहद अहम

है। समुद्री व्यापारिक मार्गों से इसकी निकटता और चीन के विस्तारवादी मंसूबों के कारण मालदीव भू-राजनीति के केंद्र में रहा है। सुरक्षा कारणों से मालदीव भारत के लिए महत्त्वपूर्ण है, इसलिए अपने सुरक्षा के करीब चला गया था और शी जिनिपंग की 'बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव' का हिस्सा भी बन गया। इंफ्रास्ट्रक्चर विकास के नाम पर मालदीव चीन से लगभग एक बिलियन डॉलर का कर्ज ले चुका है। यहां तक की माले को अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे से जोड़ने वाला पुल भी चीन के निवेश से बना है। वर्ष 2016 में मालदीव ने चीन को अपना एक द्वीप मात्र 40 लाख डॉलर में 50 वर्षों के लिए लीज पर दे दिया। विश्व भर से चीनी ऋण जाल के कई उदाहरण सामने आए हैं। मालदीव के पड़ोस में श्रीलंका के हंबनटोटा बंदरगाह को चीन ने जिस तरह से कब्जे में ले लिया, वह उसकी रणनीति का हिस्सा है। चीन ने निरंतर हिंद महासागर में अतिक्रमण करने का प्रयास किया है, जिससे भारत की उपस्थिति को सीमित किया जा सके। खाड़ी के देशों से चीन का तेल यहीं से होकर गुजरता है, इसलिए चीन इसे सुरक्षित करने के लिए मालदीव में अपनी नौसेना की पहुंच बनाना चाहता है, जिससे ग्वादर के बाद हिंद महासागर में उसके पास दूसरा अड्डा हो जाएगा। भारत हमेशा से मालदीव में चीन के विस्तारवादी प्रभाव को सीमित करने के प्रयास करता रहा है तथा मालदीव में अपनी मौजूदगी बनाकर हिंद महासागर के बड़े हिस्से पर निगरानी भी करता है। मालदीव में चीन समर्थक मुइज्जू की जीत से निश्चित ही चीन को फायदा हो सकता है, लेकिन वहां भारत का प्रभाव तुरंत कम नहीं होगा।

मौजूदा स्थिति में मालदीव के द्वारा भारत और चीन के बीच संतुलन बनाने की कोशिश करने की ही स्थिति दिख रही है, परंतु भारत और मालदीव के करीबी रिश्तों को बनाए रखने की जिम्मेदारी मुइज्जू के हाथ में है। हालांकि उन्होंने स्वयं से पार्टी की तरह भारत की आलोचना नहीं की है। उनके पास चीन के ऋण जाल से मुक्त होने के साथ ही मालदीव की अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने की चुनौती खड़ी है। चीन द्वारा श्रीलंका के आर्थिक संकट में फंसने जैसी पड़ोस की घटनाओं से सबक लेकर मालदीव के लिए अपने निकटतम व सबसे शक्तिशाली पड़ोसी भारत के साथ पारंपरिक एवं रणनीतिक हितों को संतुलित कर आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर होगा ।